

हरियाणा की लोक नाट्य परम्परा (सांग) में पण्डित लख्मीचंद का योगदान

मधु शर्मा

अस्सिस्टेंट प्रोफेसर, संगीत गायन विभाग, सनातन धर्म महाविद्यालय, अम्बाला कैंट

सारांश

साँग हरियाणवी माटी में जन्मी और पली बढ़ी एक ऐसी लोकनाट्य परम्परा है जो हरियाणा की लोकसंस्कृति की पहचान है। यह मनोरंजक एवं सामाजिक जीवन के चित्रण के साथ साथ यहां के निवासियों के संघर्ष की कहानी भी कहता है सांग खुले आसमान के नीचे, चौतरफा दर्शका से घिरा लोकरंजन और लोक रुचि का क्षेत्र है। इसके कलाकार अभिनय कुशल, संजीव विशेषज्ञ तथा दर्शकों के नृत्य संगीत से बाँधे रखने में पारगत होते हैं।

पं. किशनलाल भाट, अलीबख्श, पं. बालकराम, पं. नेकराम, पं. दीपचन्द, पं. लख्मीचंद, पं. मांगेराम आदि जैसे हरियाणा के प्रसिद्ध सांगी हुए हैं जिन्होंने अपने बेहतरीन प्रदर्शन से इस लोकनाट्य को प्रचलित तथा प्रसिद्ध किया। पं. लख्मीचन्द को हरियाणा के सूर्यकवि के रूप में स्थापित किया गया है। इन्हें साँग सम्राट की उपाधि से भी अलंकृत किया गया है। पं. लख्मीचंद ने पूरणमल, नौटंकी, पदमावत, हीर रौंझा, हरिशचन्द्र शाही लकड़हारा, मीराबाई आदि साँगों में अभिनय किया।

सांग या स्वांग हरियाणा का प्रसिद्ध लोक नाट्य है। दूसरे का रूप धारण करने के लिए जो वेश धारण किया जाता है उसे स्वांग कहा जाता है। स्वांग शब्द को ही लोक भाषा में साँग कहा गया है, जिसमें किसी विशिष्ट कथा में निहित पात्रों को उसी रूप में दर्शाना की चेष्टा करते हुए अभिनय वाद संवाद एवं गीत वाद्य और नृत्य का आश्रय लेकर नृत्य नाटिका के रूप में सम्पन्न किया जाता है। यह मनोरंजक एवं सामाजिक जीवन के चित्रण के साथ-साथ यहाँ के निवासियों के संघर्ष की कहानी भी कहता है।

हरियाणवी साँग परम्परा में ऐसी विभूतियां हुईं जिन्होंने अपनी साधना के बल पर साँग परम्परा का संबोधन किया। अपने दायित्व का निर्वहन करते हुए ऐसी रचनाएं रचीं कि साँग परम्परा हरियाणा तथा आसपास के क्षेत्रों में अलौकिक होकर अपनी आभा बिखेरने लगी। ऐसे ही एक दैवीय कलाकार हुए पं. लख्मीचन्द। पं. लख्मीचन्द मानव सुलभ गुण-अवगुण से प्रभावित होते हुए भी महान एवं अद्भुत व्यक्तित्व के स्वामी थे।

कला और कलाकार की सार्थकता इसमें है कि वे मात्र मनोरंजन के साधन ना होकर जनकल्याण का माध्यम बनें। कला व्यक्तित्व से सामाजिक होकर विस्तृत तो होती ही है साथ ही समाज में उसका स्थान उत्कृष्ट होता जाता है। व्यक्ति और समाज को अपन बहाव में बहाकर उनके ध्यान को

अनैतिकता और असमाजिकता से हटाकर उन्हें नैतिकता और सामाजिकता की ओर अग्रसर करे। कलाएँ इन सामाजिक कार्यों को सदियों से पूर्ण करती आई है और वर्तमान में भी कर रही है। इतिहास पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि कलाओं के इस पावन और सार्थक कार्य में कहीं वातावरण तो कहीं समाज से व्याप्त कुरीतियों ने कथा उत्पन्न की। लेकिन यह बात भी सूर्य के समान सत्य है कि बाधाओं के समय समाज के विभिन्न विद्वान कलाकारों ने अपनी दक्षता, कार्यशैली और स्वयं के प्रभाव व्यक्तित्व के साथ अपनी कला को जोड़कर समाज को एक नई दिशा प्रदान की। इन विद्वान कलाकारों में लोक कलाकारों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण रही। ऐसे ही एक समर्पित कलाकार थे हरियाणा के जनमानस के प्रिय लोक कलाकार प्रसिद्ध साँगी पण्डित लखमीचन्द । जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से हरियाणा ही नहीं अपितु सम्पूर्ण समाज को नैतिकता की स्वर्ण किरणों से प्रकाशमान करके जनमानस के चिन्तन को एक नई दिशा प्रदान की। पं. लखमीचन्द का जन्म सोनीपत जिले के गांव जाट्टी कला में गुजर बसर करने वाले बहुत ही साधारण परिवार में हुआ। मिटटी के घर और थोड़ी सी जमीन ही इस परिवार के आय का साधन थी। बचपन में बालक लखमीचन्द पशुओं को चराने जंगल जाते और सारा दिन सुने सुनाए लोकगीतों को गुनगुनाते रहते। इसी आयु में उन्होंने अनेक भजन मंडलियों और साँगियों की कला का रसास्वादन किया जिसका इनके जीवन और चरित्र पर विशेष प्रभाव पड़ा। उनके स्वयं के गांव या आसपास के गांवों में जो भी कलाकार आता लखमीचन्द तमाम बाधाओं और मुश्किलों के होते हुए भी उनको सुनने अवश्य जाते। इसी वजह से कई बार उनको बुजुर्गों का कोपभाजन भी बनना पड़ा, लेकिन मस्त, फक्कड़ स्वभाव और चिन्तनशील व्यक्तित्व वाले इस बालक पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। लखमीचन्द व्यक्ति विशेष से अपनी भावनाओं, चिन्तन को संचित न करके सारे वातावरण में निहित पाते थे। वे तो गाय भैंसों, पेड़-पौधों, घर-परिवार वाले, अडोसी-पडौसी, गांव और समाज सब को बराबर का दर्जा देते थे। इसी कारण इस रचनाकार की रचनाओं में नैतिक मूल्यों, सामाजिक चेतना और ज्ञान को एक अथाह सागर मिलता है जो स्वयं का आश्रय पाकर जन-जन के हृदय पर प्रभाव डालती है। पं. लखमीचंद द्वारा अभिनित किए जाने वाले कुछ प्रसिद्ध साँग हैं - पूरणमल, नौटंकी, पद्मावत, हीर-रांझा, चन्द्र किरण, शकुन्तला, जानीचोर, राजाभोज, रघबीर जमाल, गोपीचन्द भरथरी, हरिशचन्द्र, द्रौपदी चीरहरण, कीचकविराट परब, सत्यवान सावित्री, नलदमयन्ती, सेठ ताराचन्द, चापसिंह, शाही लकड़हारा, पुरजन पुरंजनी और मीराबाई आदि ।

पण्डित लखमीचंद साँग में प्रमुख भूमिकाएँ स्वयं निभाते थे। हरिशचंद्र साँग में उनका अभिनय इतना अचूक होता था कि हजारों दर्शक साँग देखने के बाद आँसू लिए घर लौटते थे। यही तो लोक कविता एवं लोक नाट्य की सबसे बड़ी खूबी है कि दर्शक पात्रों के साथ ही जीते हैं। साँग में मंच की सज्जा साधारण होती है साँग में हिन्दी के नाटकों की तरह देश काल व वातावरण का सृजन करने के उद्देश्य से वेशभूषा, आभूषण इत्यादि के सम्बन्ध में कोई लिखित निर्देश नहीं मिलते, फिर भी हम देखते हैं लखमीचंद अपनी सहज बुद्धि एवं अनभुव के आधार पर वेशभूषा तथा अभिनय के माध्यम से वाछिंत देशकाल व वातावरण तैयार कर लेते थे।

सांग में गेयता एवं संगीतात्मकता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है यही कारण है कि पं. लखमीचंद ने संगीत के सभी तत्वों को समावेश अपनी रचनाओं में किया है। लोकवाद्यों के वादन से अति निपुण थे। वाद्य यन्त्रों के प्रभाव व महत्ता के विषय में उन्होंने अपनी विभिन्न कृतियों में लिखा भी है जैसे:

‘टुमरी गजल कव्वाली सारी बीन मै गाइये तू ॥’

संगीत की इन विद्याओं का भी इन्हें भली भाँति ज्ञान था। वे संगीत को कठिन साधना मानते थे उनका मानना था संगीत के प्रति लापरवाही नहीं होनी चाहिए। ऐसे कलाकारों पर वे क्रोधित होते थे जो सुधरे संगीतज्ञान के साथ मंच पर प्रदर्शन करते थे। उन्होंने स्वयं कहा:

‘कहै लखमीचंद साँग की राही के सब नै पाया करे सै ।

अपना मन बहलावण नै दुनिया मुँह बाया करे सै ।

या के सबनै आया करे सै गावण की लैदारी ॥’

तथा

‘ताल कंठ सुर ज्ञान चारो सही ठिकाणे साज होगा।

कहै लखमीचंद जब बैरा पाटै छंद सभा बीच जा गाया॥’

पं. लखमीचंद को महान लोक कवि, लोक संगीतकार माना जाता है। हालांकि इनकी औपचारिक शिक्षा नाममात्र ही हुई लेकिन संगीतकला, अभिनयकला, काव्यरचना तथा नाट्य आदि कलाओं में प्रवीणता उन्होंने जीवन के बारे में गूढ़चिन्तन, अथक मेहनत और अपने गुरु के प्रति अटूट आस्था एवं श्रद्धा के कारण ही प्राप्त की। उनके गुरु के प्रति समर्पण की भावना का परिचय इसी बात से मिलता है कि उनके प्रत्येक सांग का आरम्भ गुरुवन्दना से होता है और सांग के बीच में भी प्रसंगवश अथवा श्रद्धावश गुरु का आभार प्रकट करना लखमीचंद की विशेषता रही है। पण्डित जी का प्रत्येक सांग इन शब्दों से आरम्भ होती है:

‘मनै सुमर लिए जगदीश

मानसिंह सतगुरु मिले

जिन तै पा लिया ज्ञान ।’

वे सद्गुरु को ज्ञान का सागर मानते हैं।

चापसिंह साँग की इन पक्तियों की बानगी देखिए :

‘लखमीचंद करै सेवा शुरु

ज्ञान तै होग्ये पार धुरु ।

म्हारै गुरु जी का रंग ढंग गंग का असनान ध्यान

ज्ञान का झकौला सै।’

गुरु जीवन-ज्ञान और कला ज्ञान के श्रोत तो है ही, समय-समय पर उनका चिन्तन साहस और

स्वाभिमान के श्रोत के रूप में कार्य करता है। इन्हीं भावों को पण्डित जी ने “मीरा बाई” के सांग में बड़े ही मार्मिक शब्दों में व्यक्त किया है:

‘सीख लै गुरु मान सिंह की वाणी
रहै ना बल विद्या की हाणी
यूँ बतलावे ये राजा राणी
जिनके सच्चे गुरु का ज्ञान सै ,
हो दिल के दूर अंधेरे ,
कटेगें जनम जनम के रोग ।’

अर्थात् गुरु मानसिंह की वाणी सीखने से बल विद्या की कमी का आभास नहीं होता। जिनके हृदय में सच्चे गुरु का ज्ञान रहता है उनके जनम जनम के दुःख दूर हो जाते हैं।

पं. लखमीचन्द ने सामाजिक जीवन और नैतिकता आदि विषयों को साँग के माध्यम से सम्पूर्ण जनमानस के हृदयरन्ध्रों तक पहुंचाया। उनके गम्भीर चिन्तन के कारण उनको अनूठा रचियता माना जाता है। हरिश्चन्द्र, सत्यवान, सावित्री, द्रोपदी, चीर, शाही लकड़हारा, मीराबाई, सेठ ताराचन्द, भूप पुरंजन तथा पूरणमल इत्यादि साँगों में सामाजिक जीवन से सम्बन्धित समस्याओं का उठाकर समाज को नई दिशा प्रदान की।

जीवन का कोई भी पक्ष पण्डित जी की रचनाओं से अछूता नहीं रहा। राजा हरिश्चन्द्र साँग पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि वचनबद्धता, दानपुण्य, कर्तव्यपरायणता, पति-पत्नि प्रेम और वात्सल्य भाव भारतीय जीवन का अटूट हिस्सा रहे हैं। पण्डित जी ने इन जीवन मूल्यों को कभी ना विस्मृत करने पर बल दिया। श्रोता दर्शक लखमीचंद के पात्रों की भांति निराश होते, प्रसन्न होते, हंसते, रोते, भारतीय सत्यनिष्ठा के प्रतीक राजा हरिश्चन्द्र को कर्तव्य की अपेक्षा भावनाएँ मूल्यहीन सी जान पड़ती है। रचना में निहित भावों को अनुभव कीजिए:

‘घाट के मालक खुद बण री से अपणा जबर वसील्ला करकै।
ईमान भलोवण लागी, मिट्टा बोल रसील्ला करकै ॥
किसने मारी तरले माट पै, चढके चरणा करम बात पै ।
ल्हास ने उठा लाई घाट पै, गोरे गात नै लिल्ला करकै ॥
कित विषयर न डंक चभो दिया,
मेरा रते मै लाल लको दिया,
होणी नै सब तरां खो दिया, इज्जतदार नुक्कीला करकै ॥
कित घुँघट में दुबकण लागी
चोट जिगर में सुबकण लागी
समसाणां मै सुबकण लागी, तरले होठ नै ढील्ला करकै ।’

अर्थात् हरिश्चन्द्र रानी से कहते हैं कि स्वयं अपने बेटे को अपने हाथों से मारकर बिना कारण ही मुझसे झगड़ा आरम्भ कर दिया। भाग्य ने राजा को हर प्रकार से लूट लिया। जीवन ऐसे बिखर गया मानो नीचे रखा घड़ा टूटने पर ऊपर रखे घड़ों का पानी बिखर जाता है। पण्डित जी ने जीवन में आने वाले दुःखों की उपमा घड़ों से बहते पानी से की है। इसके बावजूद भी आदमी को अपना धर्म नहीं छोड़ना चाहिए। साँग की रचनाओं में इस बात को बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया रानी मरघट के महसूल (कर) के रूप में अपना आंचल तक राजा को सौंप देती है और राजा इसको अपने मालिक “कालिया भंगी” को सौंप देते हैं:

‘ले थामह हाथ मै काले, अपणे मरघट का महसूल
मुझ बंदे का माडा भाग था
इस देही के लागणा दाग था
एक हाथ्या का लाया बाग था
काट दिए विधना नै डाले
मेरा गया सूख हजारा फूल ।

पण्डित जी द्वारा रचित साँग सत्यवान सावित्री भी सामाजिक जीवन के कर्तव्यों, सिद्धान्तों और मूल्यों से ओत-प्रोत है। सावित्री के पिता जब उसके लिए उपयुक्त वर ढूँढते थक जाते हैं तो कहते हैं कि पुत्री तुम स्वयं ही अपने लिये उपयुक्त वर का चुनाव करो। यहाँ यह पद इस बात का संकेत देता है कि समाज में लड़की को पर्दे की वस्तु ना समझ कर अपने निर्णय स्वयं लेने के लिए स्वतन्त्र होना चाहिए। सभी सदस्यों को परिवार के दुःखों को बांटना चाहिए।

सन्तान को तभी सुख से सोना चाहिए जब माता पिता चैन की नींद सोते हो। सत्यवान को वर के रूप में चुनने के पश्चात् उसकी उम्र के कम होने की बात ज्ञात होने पर भी अपने निश्चय पर अडिग सावित्री कहती है। संसार ही नश्वर है। सावित्री के दृढ़ निश्चय के सामने सब झुक जाते हैं। “कुछ पहचान ना करी जा भाई सादी कर दयो कुछ ना डर सै, इसके मन का चाहया वर सै ओर की इसकी वृद्धि थिर सै रोक्क्या ताग्या ना करी जा भाई।”

अन्त में जब धर्मराज सत्यवान के मृत शरीर से आत्मा निकाल कर चल देते हैं तो अटूट आत्मबल, धैर्य, पवित्रता और पति के पुनर्जीवन में अचल विश्वास रखने वाली सावित्री धर्मराज से कहती हैं:

‘धर्मराज से सावित्री फरमाई।
थारे बिना परभू कौण करै सहाई।।
आत्मा अपणी पै ज्ञान को छिड़का लगाओ खास ।
प्रीती से विश्वास होता, धरम नै निभाओ पास ।
सतपुरुषों की आत्मा पे धरम नै निभाओ पास।।’

भारतीय संस्कृति में पति वरण एक ही बार किया जाता है। प्रियतम को ईश्वर के समान मान सारी उम्र उसकी आसक्ति में बीत जाती थी। पति प्रेम केवल इस संसार में आनन्ददायक नहीं अपितु मोक्ष और सुखी परलोक का भी माध्यम है। स्वयंवर के समय 'दमयन्ती' के इन्ही विचारों को पं. लखमीचंद ने कितने सुंदर शब्दों में व्यक्त किया है:

'दमयन्ती नै सरधा करके, देवताओं को परणाम किया।

हंस के बोल्ली राजा नल तै, तुम्ही हमारे वर्णों पिया।

हंस के कहे हुए वचनों से

जै इब जाओगे टलकै।

या जहर मंगा के खाल्युंगी या अगनी बीच मरुँ जलकै ।

इब तो बरो मनै मेरे साजन

धोऊँ पैर तेरे मल मल कै।

नही तो एकान्त में फांस्सी लैके , खुद आप मरु गल मै घल कै।

किसी ने किसी तरा आप मार

के खोलयू अपणा आप पिया।।'

एवं

'जो मेरे मन का सत संकल्प

उससे नहीं हिलुंगी

जै पतिवरता धरम छोड़ दयूँ

तैं फूल्लू नही फलुंगी

हंस के कहे हुए वचनों तै

हरगिज नहीं टलुंगी

काट्य दियों संसार के बंधन मोक्ष में गैल चलुंगी।'

पं. लखमीचंद द्वारा रचित प्रत्येक साँग ने समाज में उपस्थित किसी न किसी समस्या को लोगों के समक्ष उजागर किया है और अपनी प्रभावशाली गायकी के माध्यम से लोगों को आगाह करते हुए बुराइयों को त्यागने के साथ-साथ अच्छाईयों को अपनाने का सशक्त प्रयास किया है। नैतिकता पण्डित जी के साँगों का प्रिय विषय रहा है। प्रत्येक साँग में प्रसंगवश समाज को उसका पाठ पढ़ाने से नहीं चूकते। यह विषय जितना गूढ़ है उतना ही विस्तृत भी, लेकिन पण्डित जी इसको सरल बनाकर लोगों के हृदयों में इस प्रकार उतारते थे कि सुनने वालों को स्वयं भी नहीं ज्ञात होता कि उनके जीवन में कब इन मूल्यों को प्रवेश हो गया। यह उसी प्रकार से जैसे रोग दूर करने के लिए कडवी दवाई को मीठा आवरण चढ़ाकर रोगी को दिया जाता है इसी धारण को धुरी बनाकर पण्डित जी ने साँगों की रचना की और अपने उद्देश्य में सफल भी रहे। इस प्रकार यह बात बिल्कुल गंगाजल की तरह पवित्र और सत्य है कि पण्डित जी

सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों के प्रबल समर्थक और प्रचारक थे जिन्होंने संगीत को माध्यम बनाकर समाज को उज्ज्वल, पवित्र और प्रकाशमान दिशा प्रदान की। पं. लखमीचन्द ने अपने जीवनकाल में बहुत सारे विषयों पर साँग की रचना की जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं- शाही लकड़हारा, सेठ ताराचन्द, शकुन्तला, सत्यवान सावित्री, नौटंकी, अनिरुद्ध, पद्मावत, सरणदे, रूपबसन्त, भरथरी पिंगला, सरवर नीर छोरे बागडी, ध्रुव भगत, धर्मकौर, चन्द्रहास, पूरणमल, हीर-रांझा, धर्मपाल शांता कुमारी, मीराबाई, बीजा- सोरठ, जैमलफत्ता, जयानी चोर, अंजनादेवी, राजा हरिशचन्द्र, हूर मेनका, चन्द्रकिरण, चीरहरण, जमाल, उरवर-अनिरुद्ध, परंजन परंजनी आदि ।

पं. लखमीचंद ने साँग कला को अध्यात्म का आवरण ओढ़ाकर समाज के बीच में इस कला का स्तर बहुत उंचा उठा दिया वे एक महान कवि, गायक, नृतक एवं साँगी थे। उनको लोक मनोविज्ञान की गहरी परख थी। उनका व्यवहारिक, सांस्कृतिक और सामाजिक ज्ञान कमाल का था सांस्कृतिक मूल्यों एवं आदर्शों के मर्यादा को ध्यान में रखकर सामाजिक रिश्तों का वर्णन उनकी विशेषता है। इन्हीं विशेषताओं के कारण पं. लखमीचंद को साँग सम्राट भी कहा गया। साँग परम्परा को नई उंचाइयां देने वाले पं. लखमीचंद का स्वर्गवास महज 41 वर्ष की अल्पायु में सम्वत् 2003 में यानि 1945 को हो गया। हरियाणा लोक संगीत से जुड़ने वाला हर छोटा बड़ा कलाकार, साहित्यकार, वाद्य वादक उनको कभी नहीं भूल पाएंगे।

सन्दर्भ सूची

हरियाणा तथा पंजाब की संगीत परम्परा. डा. रीता धनकर, संजय प्रकाशन ,नई दिल्ली।

पं. लखमीचंद ग्रंथावली. डा. पूर्णचन्द शर्मा, हरियाणा ग्रन्थ अकादमी, पंचकूला ।

साँग सम्राट पं. लखमीचंद. डा. राजेन्द्र स्वरूप वत्स, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़ ।

हरियाणा के सूर्य कवि लखमीचंद. श्री कृष्ण चन्द्र शर्मा, हरियाणा पब्लिकेशन ब्यूरो. चण्डीगढ़।